सल्तनत कालीन संगीत– भारतीय इतिहास के आईने में

डॉ0 ज्योति सिनहा,

पूर्व फेलो,
भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि.प्र0)

कलायें समाज के सांस्कृतिक विकास की सूचक होती हैं। समाज के विकास में इनका योगदान महत्वपूर्ण है। ललित कला के अन्तर्गत संगीत का का स्थान सर्वोपरि है जिसके निमित्त गायन, वादन, नृत्य तीनों का यथोचित् संयोग माना गया है। भारतीय संगीत की परम्परा अत्यंत प्राचीन है और शायद इसकी प्राचीनता ही इसके गौरव को अधिक सुशोभित करती है। मानव विकास के साथ ही संगीत का भी क्रमशः होता गया।

प्राचीन काल में हमारा संगीत कैसा था अथवा किस रूप में था, इसका उल्लेख वैदिक ग्रंथों, साहित्यों में स्पष्ट रूप से है। गीत, वाद्य व नृत्य तीनों का प्रयोग प्रायः अभिन्न साहचर्य के रूप में प्राप्त होता है। वेद चतुष्टयी में सामवेद का संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रथम ग्रंथ है जिसके द्वारा भारतीय संगीत का वृहत्त स्वरूप हमारे सामने अभिव्यंजित होता है। प्रारम्भ में तीन स्वर ही थे– उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित। धीरे–धीरे सांगीतिक सामाजिक विकास के साथ–साथ सप्त स्वरों का नामाभिधान हुआ। सामगान की महत्ता निर्विवाद रूप से स्वीकार की गयी। उपनिषद काल में भी सामगान का गौरवपूर्ण स्थान रहा। नारदीय शिक्षा का वैशिष्ट्य भी संगीत सम्बन्धी विवरणों से है। रामायण काल में संगीत विषयक समुन्नति एवं प्रसार के सर्वत्र दर्शन होते हैं। संगीत के कला पक्ष के साथ–साथ शास्त्र पक्ष का विकास भी इसी समय हुआ। इस काल में जाति तथा राग दोनों का प्रचलन पाया जाता है। महाभारत काल में वैदिक तथा लौकिक दोनों संगीत प्रणालियों का समान रूप से प्रचलन था। संगीत कला के रसास्वादन की क्षमता तत्कालीन राजाओं में विद्यमान थी। गन्धर्व एवं किन्नरों का भी उल्लेख है।

पाणिनी के समय वैदिक संगीत अपने उत्कर्ष पर था। बौद्ध एवं जैन ग्रंथों में भी संगीत का यथोचित् उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक ऋचाओं की भाँति बौद्ध सुतों को सस्वर पढ़ने की प्रणाली थी। तत्कालीन सम्पन्न परिवारों में संगीत का सम्यक् अध्ययन किया जाता था। प्राचीन भारतीय संगीत के स्वर्णिम इतिहास में 'नाट्यशास्त्र' अपना अलग महत्त्व रखता है। प्राचीन भारतीय साहित्य एवं संगीत का यह वृहत् कोष है, जिसे वेद के समान माना गया।

गुप्त काल को भारतीय इतिहास एवं संस्कृति का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल में समस्त कलाओं की उन्नति हुयी। गुप्त नरेशों की संगीताभिरूचि के कारण संगीत कला का चरम उत्कर्ष इस युग में पाया जाता है। संगीत के शास्त्रीय एवं लौकिक दोनों पक्षों का समानान्तर विकास इस काल खण्ड में होता रहा। गुप्तकालीन संगीत पर प्रकाश डालने वाला संगीत का ग्रंथ मतंग का 'वृहद्देशी' अत्यंत महत्पूर्ण है। गुप्तकालीन जैन सूत्रों, संस्कृत नाटकों, कालिदासकृत ग्रंथों आदि में भी संगीत विषयक पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं।

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक इतिहास पर यदि हम दृष्टियात करें तो हमें ज्ञात होता है कि संगीत के बारे में सबसे कम जानकारी 600 से 1100 के समय में मिलती है।

क्योंकि गुप्त काल के बाद भारत में किसी एक शासक का शासन न रह सका। छोटे–छोटे राज्यों में बंटा भारत की राजनीतिक स्थिति का प्रभाव इस काल की कला संस्कृति पर भी पड़ा जो कि स्वाभाविक है। परन्तु दक्षिण भारत में संगीत का पर्याप्त विकास हुआ। क्योंकि विदेशी आक्रमणों एवं आपसी वैमनस्यता का प्रभाव उत्तरी भारत पर ही रहा। दक्षिण भारत इन आक्रमणों से अछूता रहा।

राजपूत राजाओं ने कला को प्रोत्साहन अवश्य दिया। अनेक नाटकों की रचना इस काल में हुयी। शंकुक, भट्टनायक, भट्टलोल्लट इत्यादि महान आचार्य हुये जिन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

इसी समय 'घराने' की परिपाटी ने जन्म लिया। अल्बरूनी ने इसे संगीत के लिये सबसे बड़ा दुर्गुण निर्देशित करते हुये बताया कि इस घराने की परिपाटी ने संगीत के विकास को अवरूद्ध बना दिया और इस संकीर्णता में ही राजपूत काल के संगीत को स्वस्थ वातावरण में पनपने नहीं दिया। इस युग में सबसे प्रतिभाशाली नाटककार भवभूति हुये जिनके द्वारा लिखे नाटक उत्तर 'रामचरितम्' 'महावीर चरित' एवं 'मालती–माधव' बहुत प्रसिद्ध हुये। इन नाटकों में संगीत की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर हो सकी। इस काल में संगीत के राग–रागिनीयों के बहुत से चित्र मिलते हैं। 'नान्यदेव' ने 'भरत–भाष्य' की रचना की जिसने पुराने मार्ग संगीत की विभिन्न जातियाँ स्वर लिपिबद्ध है। सोमेश्वर ने भी संगीत पर आधारित पुस्तकें लिखी। 'मानसोल्लास' एवं ''अभिलाषितार्थ–चिन्तामनी'' जिसमें संगीत एंव नृत्य का वर्णन है।

वस्तुतः संगीत के दृष्टिकोण से यह काल समृद्ध नहीं रहा, जिसके कारण देश में अव्यवस्था फैली। अतः संगीत प्रचार के मार्ग में भी बाधा पड़ना स्वाभाविक था।

मुसलमानों का आगमन भारत में 11वीं शताब्दी में हुआ। इसी समय से भारतीय संगीत में परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। भारतीय संगीत शास्त्र उस समय संस्कृत भाषा में होने के कारण मुसलमान उसे समझने में असमर्थ रहे फिर भी गायन वादन में उन्होंने अच्छी उन्नति की। इस्लाम में संगीत, नृत्य को धर्म विरूद्ध बताया गया है फिर भी मुस्लिम देशों से इन कलाओं का लोप नहीं हुआ। तुर्क आक्रमणों का प्रभाव विशेष रूप से राजनीतिक रहा तथा इसका विशेष प्रभाव आम लोगों के सामान्य जीवन पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु इसने हिन्दू–मुस्लिम की परम्पराओं के समन्वय को जन्म अवश्य दिया। तुर्कों के आगमन के पश्चात् हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय में संगीत भी अछूता नहीं रहा। सन् 1206 ई0 से विशेषतः सल्तनत काल का आरम्भ माना जाता है।

भारतीय संगीत में कुछ नये–नये तत्वों का सम्मिश्रण किया गया। नये रागों का अविष्कार हुआ, तरह–तरह के नवीन वाद्य बने, नई शैलियों ने जन्म लिया और इन सभी का तत्कालीन मुस्लिम बादशाहों द्वारा आदर हुआ तथा गायक वादकों का सम्मान होने लगा। ईरानी संगीत की कुछ विशेषताओं स्वीकार की गयी तथा दोनों संस्कृतियों के मेल से नयेराग एवं शैलियों का विकास हुआ। संगीत सम्बन्धी ग्रंथों की भी रचना हुयी।

11वीं शताब्दी के अन्त में ही संगीत की दो धारायें प्रवाहित हुयी– उत्तरी एवं दक्षिणी। जिसका प्रमुख कारण यह था कि उत्तर भारत में तुर्कों का आगमन हुआ तथा वाह्य आक्रमणकारियों का प्रभाव विशेष रूप से उत्तर भारत पर रहा जिसके कारण भारत की राजनीति स्थिति में अशांति उत्पन्न हुयी। इस राजनीतिक अशांति एवं अस्थिरता का प्रभाव संगीत के क्षेत्र पर भी पड़ना स्वाभाविक था। दक्षिण भारत इन

आक्रमणों से अछूता ही रहा। अतः वहाँ की संगीत की विकास यात्रा निर्बाध रूप से चलती रही।

यह सत्य है कि राजपूतों के निवास में संगीत गूंजता रहता था।

12वीं सदी में जयदेव ने 'गीत–गोविन्द' की रचना की जो काव्य–गेय परम्परा की अद्भुत् उपलब्धि रहा है। जयदेव बंगाल के राजा लक्ष्मनसेन का राजकवि था। 'गीत–गोविन्द' अर्धनाटक एवं अर्धगीत है। इसमें कृष्ण एवं गोपियों विशेष रूप से प्रेयसी राधा के प्रेम का चित्रण है। गीत–गोविन्द एक सूड–प्रबन्ध है जिसे आज भी अनेक गायक ताल–स्वरों में बाँधकर गाते हैं। गीत–गोविन्द की विशेषता पर मुग्ध होकर पाश्चात्य विद्वान एडविन अर्नाल्ड ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद– ''द इण्डियन सांग ऑफ सांग्स'' अर्थात् ''गीतों में भारतीय गीत'' नाम से किया है।

इसी समय प्रसिद्ध कवि कल्हण ने 'राजतरंगिणी' की रचना की जिसमें कश्मीर के राजाओं की वंश परम्परा के साथ–साथ कश्मीर की कलात्मक विशेषताओं का उल्लेख वर्णित है। इस समय के चित्रों में विभिन्न वीणाओं का चित्रण है। राजपूत राजा सदैव कला को प्रोत्साहन देते थे परन्तु आपसी लड़ाई एवं कटुता में वे सदैव संलग्न रहे जिसका प्रभाव कलाओं के विकास पर पड़ा।

13वीं शदी में 'संगीत रत्नाकर' नामक संगीत विषयक एक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की गयी। इसके रचयिता पं0 शारंगदेव (1210–1247) देवगिरि के यादववंशीय राजा के दरबारी संगीतज्ञ थे। यह ग्रंथ 'अड्यार' लाइब्रेरी से सन् 1943 में छपा है। भारतीय संगीत के मध्य युग तक के विस्तार एवं विकास को समझने के लिये 'संगीत रत्नाकर' जैसा अन्य कोई दूसरा ग्रंथ नहीं है। प्राचीन संगीत में जो स्थान 'नाट्यशास्त्र' का है, वही मध्यकालीन संगीत में 'संगीत–रत्नाकर' का। इस पर जितनी टीकायें लिखीं गयी, उतनी किसी अन्य ग्रंथ पर नहीं। तथा 18वीं शताब्दी तक जितने भी संगीत के ग्रंथ लिखे गये, उन सब पर इसका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस ग्रंथ में शारंगदेव ने नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना सभी का विवेचन किया है। इसमें गायन–वादन–नृत्य से सम्बन्धित सात अध्याय क्रमशः स्वराध्याय, राग विवेकाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय एवं नर्तनाध्याय है। मूर्च्छनाओं की मध्य सप्तक में स्थापना, विकृत स्वरों की कल्पना, मध्यम ग्राम का लोप और प्रति मध्यम की उत्पत्ति इत्यादि 'रत्नाकर' की मौलिकता को प्रगट करती है।

इस समय तक भरत की जातियाँ नष्ट हो चुकी थी तथा मतंग के काल के देशी रागों का स्थान अनेक रागों ने ले किया था जिन्हें अधुना प्रसिद्ध राग कहा जाता था। दक्षिणी एवं उत्तरी संगीत का यह आधार ग्रंथ माना जाता है। 'संगीत रत्नाकर' की उपादेयता संगीत के लिये महत्वपूर्ण है।

इसी समय अमीर खुसरों नामक प्रसिद्ध कवि एवं गायक का उल्लेख प्राप्त होता है जो इस समय के सबसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। इन्हें मध्यकालीन संगीत परम्परा का संस्थापक माना जाता है। भाषा एवं साहित्य तथा संगीत पर इनका पूर्ण अधिकार था। अमीर खुसरो भारतीय संगीत से बेहद प्रभावित थे। उन्होंने भारतीय संगीतशास्त्र का गहन अध्ययन किया। इस समय जाति गायन प्रचलन में था जो मूर्च्छना पद्धति पर आधारित था। अमीर खुसरो भारतीय ग्राम मूर्च्छना पद्धति से परीचित नहीं थे। वह ईरानी पद्धति के चार वसूल व बारह परदे आदि सिद्धान्तों से भली–भाँति परीचित थे। इन्होंने भारतीय रागों का वर्गीकरण संगीत में प्रयुक्त होने वाले बारह स्वरों के ईरानी नामों के आधार पर किया जो क्रमशः इस प्रकार है– रास्त, शहनवाज़, ढोका, कुर्द, सीका, गिरका, हिज़ाज़, नवा, हिसार, हुसैनी,

अगन और नीम माहुर। (दृष्टव्य– पृ0सं0481 मध्यकालीन भारत–हरिश्चन्द्र वर्मा)

अमीर खुसरो ने भारतीय एवं ईरानी संगीत के मिश्रण से अनेक रागों–वाद्यों, शैलियों का अविष्कार किया। उसने भारतीय एवं ईरानी सिद्धान्तों के सम्मिश्रण से कुछ नये राग निकाले जो मध्यकालीन भारतीय ईरानी संस्कृति के विशिष्ट लक्षण है। 15–16वीं शदी में लिखे गये महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ''राग दर्पण'' के अनुसार अमीर खुसरो ने निम्नलिखित रागों का सुत्रपात किया–

मुज़ीर सरपर्द बसीट गजन तराना

एमन फ़िरोदस्त सुहिल फ़रगान निगार

युवाफ़िक, कौल साजगिरि बारवर्ज शाहान

ज़िलाफ़ ख्याल उश्शाक मूजम

(राग दर्पण)

कुछ विद्वान वर्तमान प्रचलित 'सितार' तथा 'तबला' जैसे वाद्यों के अविष्कार का श्रेय भी अमीर खुसरो को देते हैं। परन्तु अनेक विद्वानों ने इस विषय पर अपना मत प्रकट करते हुये स्पष्ट रूप से कहा है कि सितार का अविष्कार 'सदारंग' को छोटे भाई 'खुसरो खां' ने किया। कहा जाता है कि मृदंग के आधार पर उसने 'तबले' का आविष्कार किया परन्तु इस पर भी इतिहासकारों में मतभेद है। मुगल सम्राट शाह आलम के 'नादिरशाही' में जिन भारतीय वाद्यों एवं वादकों का वर्णन है उसमें सितार अथवा तबला वादन का उल्लेख नहीं है और यही कारण है कि कुछ विद्वान इसे 18वीं शताब्दी का वाद्य मानते हैं। 'कौव्वाली' गायन की सूत्रपात इसी समय से माना जाता है।

अमीर खुसरो गयासुद्दीन बलबन के समय से गयासुद्दीन तुगलक के समय तक प्रसिद्ध दरबारी, सूफी, कवि एवं संगीतकार रहे। इनकी गणना देश के विख्यात संगीतकारों में की जाती है। अमीर खुसरो के संगीत की प्रशंसा दक्षिण तक थी। बहमनी सुलतान मुहम्मद शाह प्रथम ने खुसरो की प्रशंसा सुनकर विजय नगर के शासक बुक्का को यह आदेश दिया था कि कलाकारों को पुरस्कार विजय नगर के राजकोष से दिया जाये। विजय नगर के राजाओं ने संगीत–नृत्य को भरपूर प्रोत्साहन दिया।

खुसरो अपने ग्रंथ ''किरानुस्सादे'' में कैकुबाद (1287–90) के शाही संगीत सम्मेलनों का बड़ा रोचक वर्णन करते हैं। अपने ग्रंथ ''नूर–सिपहर'' (नव आकाश) में वे भारत को दस बातों के कारण अन्य देशों से अलग बताते हैं। जिसमें आठवां कारण वे बताते हैं कि– ''भारतीय संगीत से हृदय एवं आत्मा उद्वेलित हो जाते हैं। यह संगीत किसी भी अन्य देश के संगीत से उत्तम है तथा इसे सीखना आसान नहीं।''

अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत की प्रशंसा इस प्रकार की है– ''यहाँ का संगीत मनुष्यों को ही नहीं, पशुओं को भी प्रभावित कर लेता है। भारतीय संगीत से हिरन कृत्रिम निद्रा में निमग्न हो शिकारी का शिकार बन जाते हैं। यदि कोई अरब संगीत से भारतीय संगीत की तुलना करे तो मैं कहूँगा कि संगीत के सहारे यात्रा करने वाले ऊँट को चलने का तो होश रहता है परन्तु भारतीय संगीत के द्वारा मोहित हिरण तो सर्वथा चेतनाहीन हो जाते हैं।'' इस प्रकार भारतीय संगीत की उत्कृष्टता की वे सहज ही स्वीकारते हैं। भारतीय संगीत की विकास यात्रा में खुसरों का योगदान अवर्णनीय एवं अतुलनीय है।

सुफी एवं चिश्तीपरन्परा के विस्तार के साथ–साथ संगीत का विस्तार भी हुआ। क्योंकि सुफ़ी संगीत को अल्लाह को याद करने का सशक्त माध्यम मानते थे। सुफ़ी विचारों को व्यक्त करने के लिये गायकी ने संगीत का सहारा लिया। ये गजल रूप में खुदा की इबादत करते थे जो प्रेम काव्य से ओत–प्रोत होती थी। इस गेय काव्य ने समकालीन भारत की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के मध्य भाषागत समन्वय की

स्थापना की तथा इसी समय हिन्दी की गेय रचनाओं को भारतीय अथवा ईरानी दोनों ही धूनों में गाया जाने लगा। इस समय की प्रसिद्ध गायन शैलियां थी गज़ल एवं कौव्वाली। सन् 1210 से 1388 तक गज़ल की प्रसिद्धि सभी बादशाहों के दरबार में रही। सुल्तान ईल्तुतमिश, बल्बन का पुत्र शहज़ाद मुहम्मद, अल्लाउद्दीन खिलजी मुबारकशाह खिलजी, गयासुद्दीन तुगल, मोहम्मद तुगलक एवं फ़िरोज तुगलक को गज़लें बेहद प्रिय थीं। तथा इनके समय में इस शैली की विशेष प्रचार–प्रसार हुआ।

'कौव्वाली' जौ कौल शब्द से बना था एवं जिसका अर्थ है 'कथन'। यह शैली भी गज़ल के समान ही लोकप्रिय रही। कौव्वाली गाने वालों को 'कौव्वाल' कहा जाता था।

बड़े–बड़े सुफ़ी संतों के खानकाओं में संगीत सभाओं का आयोजन किया जाता था तथा बड़ी धूमधाम से कौवालियां गाई जाती थी। धीरे–धीरे कौव्वाली सूफी मत का विशिष्ट अंग बन गया।

सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी भी संगीत का बड़ा शौकीन था। उसके दरबार में मुहम्मद शाह, फ़िकाई की पुत्री चन्गी फ़तुरा, नुसरत खातून एवं मैहर अफ़रोज जैसी निपुण संगीतकार रहती थीं। तत्कालीन ग्रंथ ''एज़ाज–ए–खुश्खीं'' में अल्लाउद्दीन खिलजी के राज्यकाल के संगीतज्ञों का विवरण है जिसमें भारतीय एवं ईरानी दोनों पद्धतियों के कलाकारों का नाम है। इस समय निम्न वाद्य बजाये जाते थे– चंग, चगनाना, डफ, नाय, तम्बूर, दस्तक, शहनाई, रबाब इत्यादि।

गोपाल नायक (1205–1315) खुसरो के ही समकालीन थे एवं महान संगीतज्ञ थे। वे दक्षिण के रहने वाले थे एवं एक किवदन्ती के अनुसार युद्ध के समय अलाउद्दीन खिलजी के साथ इनके दरबार में ये आये थे जहाँ खुसरो से उनकी संगीत प्रतियोगिता भी हुयी थी। आलाप, गीत, प्रबन्ध एवं ठाय गाने में ये पारंगत थे। इनकी रचना 'राग–कदंब' के नाम से प्रसिद्ध है।

अलाउद्दीन खिलजी ने गोपाल नायक को पर्याप्त प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान किया तथा गोपाल नायक ने भी अलाउद्दीन की प्रशंसा की है जिसा उल्लेख उनके एक ध्रुपद में मिलता है–

धक दलन रे प्रबल्लनाद,

सिंह नाद बल अपबल वक्कवर।

कुडान धीर अडान मिलावत चपल

चाप अचपल अक्कअर

गीत गावत नायक गोपाल विद्यावर

साहिनिसाहि अलावर्दीतर्प डिली

नरेस जाके वसुधा सुचित तुअतकधर।।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि गोपाल नायक एक उच्चकोटि के गायक व संगीतज्ञ थे तथा उन्होंने भारतीय संगीत के विस्तार एवं विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक (1325–1351) अपने पिता के विपरीत उदार प्रकृति का सुल्तान था। वह कलाकारों को प्रश्रय एवं सम्मान देता था। वर्णित है कि उसके दरबार में 1200 गवैये थे जो विभिन्न अवसरों पर उनका मनोरंजन करते थे तथा साथ–साथ शिक्षा भी प्रदान करते थे। फिरोज तुगलक का इतिहासकार अफीफ लिखता है कि– ''सुल्तान संगीतज्ञों को संरक्षण देता है। शुक्रवार के नमाज़ के बाद सभी संगीतज्ञ महल में एकत्रित होते थे तथा अपनी अपनी कला का प्रदर्शन करते थे।'' कुछ वाद्य जो उस समय बजाये जाते थे, इस प्रकार थे– चंग, अंर्गुन, नफीरी, कमंच, रूबाब, मिस्कत, नाय, तम्बूर, ढोल, मीर।

14वीं शती में सौराष्ट्र के राजा हरिपाल देव अपने समय के श्रेष्ठ संगीतज्ञ थे।

उनकी रचना ''संगीत–सुधा'' के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ में हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटकी संगीत का पहली बार उल्लेख हुआ है। इसी समय विजयनगर राज्य के माधव विद्यारण्य संस्कृत भाषा तथा संगीत के प्रकाण्ड विद्वान थे। उनकी कृति संगीत–सार के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरी एवं दक्षिणी संगीत पद्धतियों का पृथकीकरण पूर्वमध्यकालीन संगीत की महत्वपूर्ण घटना है।

'संगीतोषनिषद' एवं 'संगीतोपनिषत्सार' इसी समय की कृतियां हैं जिसके लेखक सुधा कलश नामक जैनमुनि थे।

सल्तनत का आरम्भिक काल बड़ा संघर्षो का काल था। विदेशी आक्रमणकारी की समझ में यहाँ का धर्म और इस धर्म पर आधारित कला सामाजिक व्यवस्था एवं जीवन–यापन का ढंग नहीं आता था और कुफ़्र कहकर वह इसे नष्ट कर देना चाहता था। किन्तु फिर धीरे–धीरे वह समझ गया कि जिसे वह नष्ट करना चाहता है वह नरगिस का पौधा नहीं बल्कि विशाल बरगद का वृक्ष है जिसकी शाखायें कटती जाती हैं और निकलती जाती हैं परन्तु पेड़ अक्षुण्ण रूप से अपनी गहरी जड़ों व तनों के बल पर खड़ा रहता है। इसी प्रकार भारतीय संगीत अपनी प्राचीन परम्पराओं पर जीवित रहते हुये इतनी अव्यवस्था के बीच भी अपनी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती रही।

14वीं शताब्दी में ही लोचन ने संगीत के एक महत्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की– 'राजतंरगिणी'। लोचन के काल के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान 12वीं एवं कुछ 14वीं शती का मानते हैं। इस ग्रंथ में प्राचीन राग–रागिनी पद्धति को छोड़कर ठाठ पद्धति अपनाई गई है। राजतरंगिणी के अधिकांश भागों में विद्यापति के गीतों पर विवेचन है।

1456–57 के बीच कल्लीनाथ ने शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' की टीका संस्कृत में विस्तृत रूप से लिखा।

जौनपुर के इब्राहिम शाह शर्की (1400–1436) तथा उनके पौत्र मोहम्मद हुसैन शाह शर्की (1457–1479) भारतीय संगीत से बेहद प्रेम करते थे। उन्होंने कलाकारों की पूर्व प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान किया। उनके दरबार में भारतीय संगीत की विशेष उन्नति हुयी। कहा जाता है कि वहीं से ख्याल गायकी की एक नई पद्धति का विकास हुआ तथा अनेक रागों की रचना की गयी। सुल्तान के अतिरिक्त कुछ अन्य अमीर भी संगीत को और संगीतज्ञों को संरक्षण प्रदान करते थे तथा प्रोत्साहित करते थे। इस संरक्षण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि गुजरात के एक मुसलमान विद्वान ने शास्त्रीय संगीत पर ''गुन्यात–उल–मुल्या'' ग्रंथ लिखा। मुसलमानों ने इस तथ्य की स्वीकार कर लिया था कि भारतीय शास्त्रीय संगीत अत्यंत उच्चकोटि का है और वह प्रचलित अरब ईरानी अथवा तथाकथित मुस्लिम संगीत से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

कड़ा मानिकपुर के शासक मलिक सुल्तान शाह के पुत्र बहादुर मलिक ने संगीतज्ञों का एक वृहत् सम्मेलन बुलाया जिसमें संगीत–रत्नाकर इत्यादि 18 ग्रंथों को एकत्रित करके सब विवादास्पद विषयों का निर्णय कराया गया और परिणाम स्वरूप 1428 ई0 में 'संगीत–शिरोमणि' नामक ग्रंथ की रचना हुयी जिसमें सभी निर्णित बातें संकलित थी।

15वीं शताब्दी से ही लगभग सांस्कृतिक पुनरूत्थान का युग आरम्भ होता है। इस युग का सबसे अधिक प्रभाव संगीत के क्षेत्र पर पड़ा। संगीत को इस युग में बड़े पैमाने पर राजकीय संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। नई प्रेरणा ने प्राचीन संगीत पद्धति में एक नया जीवन फूंक दिया और उसे विकास की एक नई दिशा की ओर उन्मुख किया।

15वीं शती में ही मेवाड़ के राजा कुम्भकर्ण के ग्रंथों में भारतीय संगीत की समन्वित

शैली का रूप मिलता है। इन्होंने 'संगीतराज' एवं 'संगीत क्रमदीपिका' नामक दो ग्रंथों की रचना की जिन पर संगीत–रत्नाकर का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। ये अपने युग के महान संगीतज्ञ थे। इस कारण इन्हें अभिनव भरताचार्य कहा जाता था। 'गीत–गोविन्द' पर उन्होंने 'रसिक–प्रिया' नाम से टीका लिखी। उन्होंने संगीत रत्नाकर पर भी एक टीका लिखी। इससे उनके संगीत के आचार्यात्व का पता तो चलता ही है, तत्कालीन संगीत की उन्नतावस्था का भी अनुमान होता है।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (1486–1516) संगीत के बहुत बड़े कोविद थे। उन्होंने संगीताचार्यों का एक महान सम्मेलन बुलाया जिसमें रागों का विधिवत् वर्गीकरण किया गया। इसी के आधार पर 'मान कुतूहल' नामक एक बहुमूल्य ग्रंथ लिखा गया, जिसमें संगीत कला की सूक्ष्मतम बातों का विद्वतापूर्ण विवेचन किया गया। मानसिंह ने ध्रुवपद को पुर्नजीवत किया एवं कुछ नये राग निकाले। उन्होंने ग्वालियर में एक शास्त्रीय संगीत की परम्परा की स्थापना की। विश्वविख्यात तानसेन इसी परम्परा के शिष्य थे। राजा मानसिंह ने शास्त्रीय संगीत के ग्रंथ 'राग–दर्पण' का फारसी में अनुवाद कराया। इससे भारतीय संगीत का शास्त्रीय ज्ञान मुसलमान विद्वानों को भी उपलब्ध हुआ। मानसिंह के दरबार में बड़े–बड़े गवैये रहते थे जैसे– बैजु, पाणवी, लोहोग एवं नायक भिक्षु इत्यादि। इस काल के संगीत को ग्वालियर ने एक नया कलेवर दिया।

विजय नगर के कृष्णदेव राय एवं संरक्षक राम राय कुशल गायक थे तथा कई ग्रंथ इनके समय में लिखे गये। अन्य दरबारों में भी संगीतज्ञ मुक्त हस्त से आश्रय पाते थे।

लोदी वंश के समय में भी संगीत को विशेष प्रोत्साहन शासकों द्वारा प्राप्त हुआ। इस समय अनेक मुस्लिम कलाकार हुये जिन्होंने संगीत के क्षेत्र में विशेष सराहनीय कार्य किया तथा हिन्दू कलाकारों ने भी इस कार्य में उनका पूर्ण योगदान दिया। सिकन्दर लोदी (1487–1517) को संगीत से बड़ा प्रेम था। इसके दरबार में इतने मनमोहक गायक थे कि उनका गाना सुनकर साकी बालायें मदिरा देना भूलकर बेसुध पड़ जाती थीं। कहते हैं कि मुल्लाओं के डर से वह प्रत्यक्ष रूप से संगीतज्ञों को नहीं बुलाता था किन्तु अपने किसी मित्र या सरदार के यहाँ संगीत का आयोजन करके समीप के खेमें में बैठकर संगीत का रसास्वादन करता था। उसी के काल में फारसी में संगीत का पहला ग्रंथ ''लहजत–ए–सिकंदरशाही'' लिखा गया। इसकी रचना उमर याहिया ने की जो अरबी–फारसी एवं संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान था। यह ग्रंथ संस्कृत में लिखे संगीत के ग्रंथों 'संगीत–रत्नाकर' एवं 'संगीत–कल्पतरू' पर आधारित है। उमर–याहिया ने इसे सिकन्दर लोदी को समर्पित किया जो इस बात का द्योतक है कि सिकन्दर लोदी जैसा कट्टर धर्मान्ध मुसलमान भी भारतीय संगीत का लोहा मानता था।

नर्तकियों, दासियों एवं वेश्याओं ने भी संगीत कला को अपने व्यवसाय का माध्यम बनाया। नृत्य का अधिक प्रचार दक्षिण में था और वहाँ इस कला में विशेष उन्नति हुयी। शिव को नटराज की मुद्रा में व्यक्त किया गया। स्त्रियां संगीत नृत्य एवं चित्रकला में विशेष दक्ष होती थीं।

संगीत के क्रियात्मक पक्ष के साथ ही संगीत साहित्य में भी बहुमूल्य वृद्धि हुयी। 15वीं शताब्दी में ही दामोदर मिश्र ने 'संगीत–दर्पण' नामक महान ग्रंथ की रचना की। इससे संगीत शास्त्र में शिवमत् की स्थापना हुयी। उन्होंने 6 राग एवं 36 रागिनियां मानी तथा उनके गाये जाने का समय निश्चित किया। इसी समय ''संगीत–रत्नावली'' सोममूपाल द्वारा लिखी गयी जो सम्भवतः 1180 में रचितमानी जाती है। अतः

शास्त्रीय क्षेत्र में विकास की एक महत्वपूर्ण अवस्था थी।

भारत अपने शास्त्रीय संगीत के लिये प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है परन्तु कट्टर मुसलमान संगीत को निश्चित रूप से अधार्मिक समझते थे और इसीलिये उनकी निंदा किया करते थे। लेकिन कुरान के अधिकांश टीकाकारों की राय में संगीत न तो अच्छा था न बुरा। दिल्ली के सुल्तानों का भी संगीत के प्रति यही उदारतापूर्ण दृष्टिकोण था।

12वीं शताब्दी का भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में सर्वप्रमुख महत्व यह है कि इस शताब्दी के पश्चात् ही प्राचीन इतिहास का अन्त होता है और मध्यकालीन भारतीय इतिहास का प्रारम्भ। सल्तनत काल का आरम्भ विशेष रूप से 1206 ई0 से माना जाता है। 11वीं सदीं के बाद मुसलमानों ने इस युग में प्रवेश किया। विशेषतः यह काल धार्मिक राजनीतिक संघर्ष का काल था तथापित इसका प्रभाव जीवन के समस्त क्षेत्रों पर पड़ा। और इन प्रभावों से अन्य कलायें भी प्रभावित हुयी।

साहित्य और कला समकालीन समाज एवं उसकी रूचियों के प्रतिबिंब होते हैं और यह भी सत्य है कि कला के माध्यम से समाज की एक विशिष्ट भूमिका स्पष्ट होती है। उस समाज का स्पष्ट चित्रण इन कलाओं के माध्यम से दिखाई देती है। उस समाज की मौलिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति कलाकार की कला में झलकती है। जो उस काल के विकास पर दृष्टिपात करने में समझने में, परखने में सहायक भूमिका का निर्वाह करती हैं।

प्राचीन काल से भारतीय संगीत की जो रसधारा निर्बाध रूप से प्रवाहित हो रही थी, वह राजपूत काल में राजपूतों की आपसी वैमनस्यता से ग्रसित होकर अवरूद्ध हुयी। आगे चलकर विदेशी तुर्क आक्रमणों का शिकार बनी तथा इस्लाम का प्रभुत्व बढ़ने के साथ यवन–इस्लाम संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित हुयी। हिन्दू–ईस्लामी सम्मिलन की धारा प्रवाहित हुयी। दोनों धर्मों के लोग एक दूसरे के समीप आये तथा दोनों ने एक दूसरे के जीवन, रीति–रिवाजों को प्रभावित किया।

भारतीय एवं इस्लामी सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के अन्तर्मिलन की प्रक्रिया ने भारतीयकरण की प्रक्रिया को जन्म दिया। समझौते एवं समन्वय की भावना का विकास हुआ। राजपूत काल में अवरूद्ध हुये संगीत को सल्तनत काल में एक नई दिशा एंव जीवन प्राप्त हुआ। यों कहना अधिक सत्य होगा कि यवन मा0 संस्कृति की नई–नई विधियों के जोड़े जाने के फलस्वरूप एक नई कला का जन्म हुआ। ख्याल एवं तराना जैसी नई शैलियों ने भारतीय संगीत का स्वरूप ही बदल दिया। प्राचीन जाति गायन के स्थान पर मध्यकालीन संगीताचार्यों ने राग गायन का प्रचलन किया।

सल्तनत काल भारतीय संगीत के इतिहास में अभिनव प्रयोगों का युग था। इस काल में बाद्यों, रागों एवं गायन शैलियों पद्धतियों का विकास हुआ। मुस्लिम सुफी सन्तों ने भी समकालीन संगीत के विकास में महत्वपूर्ण एवं बहुमूल्य योगदान दिया। सल्तनतकालीन राजाओं महराजाओं ने कलाकारों को भरपूर प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान किया। सम्राट–स्वयं की कलापारखी होता था तथा कलाकारों को समुचित सम्मान एवं पुरस्कार देता था। उनकी उदारवादी प्रवृत्ति के कारण कलाओं का विकास यथोचित् हुआ। संगीतज्ञों व कलाकारों को संगीत के क्रियापक्ष के साथ–साथ शास्त्र पक्ष की भी जानकारी होती थी।

अमीर खुसरों एवं गोपाल नायक सरीखे संगीतज्ञों का सांगितिक योगदान इस काल की महत्वपूर्ण देन है। इस प्रकार सल्तनत काल संगीत कला के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रहा। हिन्दू तथा मुस्लिम संगीतज्ञों ने आपसी

सामन्जस्य एवं समन्वयता से भारतीय संगीत को एक नई दिशा एवं दशा प्रदान की और यह साबित किया कि संगीत हर जाति, धर्म, वर्ग एवं भाषा के बंधन से उपर उठकर सम्पूर्ण मानवता के भावों से परिपूर्ण समस्त मानव के लिये है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शोध संक्षेपिका–'लोकसाहित्य की प्रासंगिकता–20,21 जनवरी 2012' शासकीय बिलासा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय बिलासपुर (छ. ग.)
2. डॉ. आर्याप्रसाद त्रिपाठी–'बघेली साहित्य का इतिहास', साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल
3. डॉ. शिवकुमार मिश्र– 'भक्ति आन्दोलन और भक्तिकाव्य', लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण–2010, पृष्ठ–300
4. परमानन्द श्रीवास्तव – ' सूरदास – मूल्यांकन / पुनर्मूल्यांकन ' अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण–2000
5. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू–'भारतीय संस्कृति कल, आज और कल', पैसिफिक पब्लिकेशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
6. शरीफ मोहम्मद–'मध्यप्रदेश का लोक संगीत'
7. नया ज्ञानोदय फरवरी 2011, रंजना जायसवाल 'उत्तराखण्ड की घसियारन ललमुनिया (कविता)'
8. डॉ. सत्येन्द्र शर्मा– 'बघेली भाषा और साहित्य', कविता–डॉ. अमोल 'बटरोही', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ–108
9. शम्भुनाथ–'संस्कृति की उत्तरकथा', वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ–124
10. वाहरू सोनवणे, स्टेज (कविता), आदिवासी साहित्य यात्रा, संपादक–रमणिका गुप्ता, भूमिका पृष्ठ पर उद्धृत।
11. 'संयोजकीय'–'लोकसाहित्य की प्रासंगिकता–20,21 जनवरी 2012' शासकीय विलासा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय ,बिलासपुर (छ.ग.)

Copyright © 2017, Dr. Jyoti Sinha. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.